व्याकरण की परिभाषाएँ

॥ संहिता ॥

सूत्र – परः सन्निकर्षः संहिता १.४.१०९

वृत्ति - वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

अर्थ - वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता (सन्धि) कहा जाता है। तात्पर्य है कि जब दो वर्णों का उच्चारण बिना व्यवधान के किया जाये तो उसे संहिता कहते हैं।

उदा. इति + अपि = इत्यपि। मधु + अरि = मध्वरि इत्यादि।

॥ संयोग ॥

सूत्र – हलोऽनन्तरा संयोगः १.१.७।

वृत्ति – अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

अर्थ – स्वरों के व्यवधान से रहित दो या दो से अधिक व्यञ्जन संयोग कहे जाते हैं।

उदा.- अग्नि (अ ग् न् इ) , इन्द्र (इ न् द् र् अ), कात्स्न्र्य (क् आ र् त् स् न् य् अ)।

॥ गुण ॥

सूत्र – अदेङ् गुणः १.१.२

वृत्ति – अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – अत् (ह्रस्व अ) और एङ् (ए ओ) इन तीनों की गुण संज्ञा होती है।

उदा. – देवेन्द्र (देव इन्द्र) , सूर्योदय (सूर्य उदय) ब्रह्मर्षि (ब्रह्म ऋषि) इत्यादि।

॥ वृद्धि ॥

सूत्र – वृद्धिरादैच् १.१.१

वृत्ति – आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – आत् (आ) ऐच् (ऐ औ) इन तीनों को वृद्धि कहा जाता है।

उदा. – देवैश्वर्य (देव ऐश्वर्य), कृष्णौत्कण्ठ्य (कृष्ण औत्कण्ठ्य), कार्य (कृ य)।

॥ प्रातिपदिक ॥

१.सूत्र - अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् -१.२.४५

वृत्ति –धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

अर्थ – धातु(भू आदि) प्रत्यय (सन् आदि) और प्रत्ययान्त को छोडकर अर्थ वाले शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा के फलस्वरूप सु औ जस् आदि प्रत्यय लग कर “रामः, रामौ” इत्यादि रूप बनते हैं।

उदा. - रामः , हरिः , इत्यादि।

२.सूत्र - कृत्तद्धितसमासाश्च – १.२.४६

वृत्ति – कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः।

अर्थ – कृदन्त तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिक कहे जाते हैं।

उदा. – चेयः , दाशरथिः , राजपुरुषः।

॥ नदी ॥

नदी संज्ञा विषयक ४ सूत्र हैं। तीन नदी संज्ञा करते हैं और एक सूत्र निषेध करता है।

१. यूस्त्र्याख्यौ नदी – १.४.३ – (ई+ऊ= यू) ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द की नदी संज्ञा होती है। (जैसे पार्वती , नदी , शची, वधू, चमू इत्यादि)।

२. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री -१.४.४ – “स्त्री” शब्द को छोडकर ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द जिन के स्थान पर (अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ सूत्र से) इयङ् या उवङ् हो जाता है वे नदी संज्ञक नही होते। जैसे (हे श्रीः , हे भ्रूः इत्यादि)

३. **वाऽमि १.४.५** – आम् (षष्ठी बहुवचन) प्रत्यय पर में हो तो उपरोक्त शब्द विकल्प से नदी संज्ञक होते हैं। जैसे (श्रियाम् / श्रीणाम् , भ्रुवाम्/भ्रूणाम् इत्यादि)

४. **ङिति ह्रस्वश्च १.४.६** – ङित् प्रत्यय(ङे, ङसि, ङस्, ङि) पर में हो तो स्त्री शब्द को छोडकर ऐसे ईकारान्त, ऊकारान्त और ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द जिन के स्थान पर इयङ् या उवङ् हो जाता है उन शब्दों की भी नदी संज्ञा होती है। जैसे (कृत्यै/कृतये , धेन्वै/ धेनवे इत्यादि)।

- **नदी संज्ञा के फलस्वरूप ऐसे शब्दों की प्रक्रिया में आण्नद्याः , ह्रस्वनद्यापो नुट् , अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः इत्यादि सूत्र लगते हैं।**

॥ घि ॥

घि संज्ञा करने वाले ३ सूत्र हैं। इस संज्ञा के फलस्वरूप ङित् (ङे आदि) प्रत्यय पर में हो तो घेर्ङिति सूत्र से गुण होता है। तथा तृतीया एकवचन में आङो नाऽस्त्रियाम् सूत्र से “ना” होता है ।

१. शेषो घ्यसखि – सखि से भिन्न, शेष (इकारान्त और उकारान्त) शब्दों की “घि” संज्ञा होती है। जैसे – हरिणा , हरये , भानुना , भानवे इत्यादि।

२. पतिः समास एव – पति शब्द यदि समास में हो तो ही उसकी घि संज्ञा होती है अन्यथा नहीं। जैसे – पति+टा = पत्या, भूपति+टा=भूपतिना ,पति+ङे = पत्ये भूपति + ङे = भूपतये इत्यादि।

३. षष्ठी युक्तश्छन्दसि वा – पति शब्द यदि वेद में हो और षष्ठी विभक्ति के शब्द से युक्त हो तो उसकी विकल्प से घि संज्ञा होती है। जैसे **“पशूनां पतये नमः”**

- घि संज्ञा होने पर प्रक्रिया – हरि +टा > हरि +आ > हरि+ना >हरिणा।
- भानु+टा >भानु+आ>भानु+ना>भानुना। हरि +ङे> हरि + ए> हरे+ए> हर् अय्+ए> हरये। भानु+ङे>भानु+ए> भानो+ ए> भान् अव् + ए > भानवे। इत्यादि।

॥ उपधा ॥

सूत्र – अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा -१.१.६५

वृत्ति – अन्त्यादलः पूर्वो वर्णः उपधासंज्ञः स्यात्।

पदों का अर्थ – अन्त्यात् (अन्तिम), अलः (वर्ण से), पूर्वः (पूर्व वर्ण), उपधा (उपधा कहा जाता है)।

उदा. – “राम”(र् आ म् अ) में उपधा म् है। राजन् (र् आ ज् अ न्) में उपधा “अ” है।

॥ टि ॥

सूत्र- अचोऽन्त्यादि टि १.१.६४

वृत्ति – अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

अर्थ – अचोऽन्त्यादि (स्वर वर्णों में जो अन्तिम है वह जिस समुदाय का आदि होता है उस समुदाय को), टि (टि कहा जाता है)।

उदा. – राजन् (र् आ ज् अ न्) में “अन्” टि है, मनस्(म् अ न् अ स्) में “अस्” टि है तथा राम(र् आ म् अ) में “अ” टि है ।

मनस् + ईषा = मनीषा। शक+ अन्धु = शकन्धु इत्यादि।

॥ अपृक्त ॥

सूत्र – अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १.२.४१

वृत्ति – एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – एकाल् (एक वर्ण वाला) प्रत्ययः(प्रत्यय) अपृक्त (अपृक्त कहा जाता है) ।

उदा. – सु (स्) सिप्(स्) क्विप्(व्) इत्यादि ।

॥ विभाषा ॥

सूत्र – न वेति विभाषा १.१.४५

वृत्ति – निषेधविकल्पयोर्विभाषा संज्ञा स्यात्

अर्थ – किसी भी विधान का निषेध और विकल्प हो तो उसे विभाषा कहा जाता है ।

उदा. – दक्षिणपूर्वस्यै , दक्षिणपूर्वायै इत्यादि ।

॥ पद ॥

पद का अर्थ शब्द होता है , पद संज्ञा करने वाले ४ सूत्र हैं ।

१– सुप्तिङन्तं पदम् १.४.१४ ।

वृत्ति- सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ।

अर्थ – सुबन्त (सु आदि २१ प्रत्यय जिनके अन्त में हों) और तिङन्त (तिप् आदि १८ प्रत्यय जिनके अन्त में हों) पद कहे जाते हैं । जैसे - रामः, रामौ, रामाः, पठति, पठतः, पठन्ति इत्यादि ।

२- नः क्ये १.४.१५ ।

अर्थ- क्य (क्यच्/क्यष्/क्यङ्) प्रत्यय पर में हो तो नकारान्त शब्द भी पद कहा जाता है । राजन् +क्यच्= राजीयति । राजन्+क्यङ्=राजायते इत्यादि।

३- सिति च १.४.१६ ।

अर्थ – सित् (जिसमें स् की इत्संज्ञा हो) प्रत्यय पर में हो तो भी पूर्व की पद संज्ञा होती है । भवत्+छस् (ईय) =भवदीयः ।

४- स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १.४.१७ ।

अर्थ – सर्वनामस्थान (सु,औ,जस्,अम्,औट् और शि) से भिन्न प्रत्यय यदि पर में हो तो पूर्व को पद कहा जाता है । राजन् +भ्याम् = राजभ्याम् ।

॥ सवर्ण ॥

सूत्र – तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् । १.१.९

वृत्ति - ताल्वादिस्थानम् आभ्यन्तरप्रयत्नश्च इत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

अर्थ = तालु आदि उच्चारण स्थान तथा स्पृष्ट आदि आभ्यन्तर प्रयत्न जिस वर्ण का जिस वर्ण से तुल्य होता है । वे परस्पर सवर्ण कहे जाते हैं ।

जैसे – क् ख् ग् घ् ङ् इन पांचों वर्णों का उच्चारण स्थान कण्ठ है तथा पांचों का आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट है अतः ये सभी वर्ण एक दूसरे के सवर्ण हैं ।

वार्त्तिक – ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ।

अर्थ - ऋ तथा लृ इन दोनों वर्णों का उच्चारण स्थान भिन्न है फिर भी दोनों वर्णों को एक दूसरे का सवर्ण मानना चाहिये ।

॥ प्रगृह्य ॥

प्रगृह्य संज्ञा करने के लिये ८/९ सूत्र हैं । जिसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है उसके बाद यदि स्वर वर्ण आता है तो भी सन्धि नहीं होती । **(प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम्)**

१. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् – १.१.११

अर्थ –द्विवचन शब्द जिनके अन्त में ई, ऊ या ए आते हों वे प्रगृह्य कहे जाते हैं ।

उदा . – हरी एतौ , विष्णू इमौ , गङ्गे अमू इत्यादि ।

२. अदसो मात् – १.१.१२

अर्थ – अदस् शब्द में म् के बाद आने वाला ई या ऊ प्रगृह्य कहा जाता है।

उदा. – अमी ईशाः, अमू आसाते इत्यादि।

३. शे -१.१.१३

अर्थ – वेदों में सुप् प्रत्ययों के स्थान पर जो **शे** आदेश होता है उसको भी प्रगृह्य कहा जाता है।

उदा .- अस्मे इन्द्राबृहस्पती , युष्मे इति इत्यादि।

४. निपात एकाजनाङ् –१.१.१४

अर्थ – एक स्वर वर्ण वाला आङ् से भिन्न निपात भी प्रगृह्य कहा जाता है।

उदा. – इ इन्द्रः , उ उमेशः, आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत्।

५. ओत् –१.१.१५

अर्थ – ओकारान्त निपात को भी प्रगृह्य कहा जाता है।

जैसे – अहो ईशाः , आहो इति , उताहो इति , नो इदानीम् इत्यादि।

६. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे – १.१.१६

अर्थ – ओकारान्त **सम्बोधन एकवचन** को शाकल्य ऋषि के मत में प्रगृह्य कहा जाता है यदि वह अवैदिक प्रयोग हो तथा उसके बाद में **इति** आता हो।

उदा.- वायो इति / वायविति, भानो इति/ भानविति।

७ – उञः – १.१.१७ तथा ८- ऊँ -१.१.१८

अर्थ – शाकल्य ऋषि के मत में "**उञ्**" तथा उसके स्थान पर होने वाला "**ऊँ**" भी प्रगृह्य कहा जाता है यदि उसके बाद **इति** आता हो तो।

उदा. – उ इति / विति, ऊँ इति /विति

९ – ईदूतौ च सप्तम्यर्थे - १.१.१९

अर्थ – सप्तमी के अर्थ में स्थित **ईकारान्त** और **ऊकारान्त** शब्दों को भी प्रगृह्य कहा जाता है

उदा – सोमो गौरी अधिश्रितः , अध्यस्यां मामकी तनू इति। इन दोनों उदाहरणों में सप्तमी विभक्ति का **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः** सूत्र से लुक् हो गया है।

॥ निष्ठा ॥

सूत्र – क्तक्तवतू निष्ठा १.१.२६

अर्थ – क्त और क्तवतु प्रत्यय निष्ठा कहे जाते हैं। तात्पर्य है कि समग्र व्याकरण शास्त्र में कहीं भी यदि निष्ठा कहा जाये तो उसका अर्थ क्त और क्तवतु होगा। जैसे **निष्ठायां सेटि , रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः, निष्ठा** इत्यादि।

॥ सर्वनामस्थान ॥

- **सर्वनामस्थान संज्ञा करने वाले दो सूत्र हैं।**

१. शि सर्वनामस्थानम् – १.१.४२।

अर्थ – नपुंसकलिंग में जस् और शस् प्रत्ययों के स्थान पर आने वाला "शि" (जश्शसोः शिः) सर्वनामस्थान कहा जाता है । सर्वनामस्थान होने के कारण "नपुंसकस्य झलचः" सूत्र से नुम् तथा सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ सूत्र से उपधा का दीर्घ इत्यादि कार्य होते हैं। कुण्डानि, वनानि इत्यादि उदाहरण हैं।

२. सुडनपुंसकस्य –१.१.४३।

अर्थ – नपुंसकलिंग से भिन्न लिंगों में आने वाले सुट् (सु,औ,जस्,अम् और औट्) को भी सर्वनामस्थान कहा जाता है।

उदा. – राजा,राजानौ,राजानः,राजानम्, राजानौ ,। भवान्, भवन्तौ, भवन्तः, भवन्तम्, भवन्तौ इत्यादि।

॥ सर्वनाम ॥

- सर्वनाम संज्ञा विषयक १० सूत्र हैं जिनमें से ३ इस संज्ञा का निषेध करते हैं तथा ७ विधान करते हैं।

१. सर्वादीनि सर्वनामानि – १.१.२७

अर्थ – सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व,नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्वम् , अन्तरम् ,त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस, एक ,द्वि , युष्मद्, अस्मद् , भवतु और किम् ये ३५ शब्द सर्वनाम कहे जाते हैं।

२. विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ – १.१.२८

अर्थ – दिशा वाची शब्दों का बहुव्रीहि समास हो तो भी उस समास में स्थित सर्व इत्यादि शब्द विकल्प से सर्वनाम कहे जाते हैं। जैसे दक्षिणपूर्वस्यै , दक्षिणपूर्वायै। उत्तरपूर्वस्यै उत्तरपूर्वायै इत्यादि।

३. न बहुव्रीहौ – १.१.२९

अर्थ – बहुव्रीहि समास में सर्व आदि सर्वनाम **नही** कहे जाते। प्रियविश्वाय , प्रियसर्वाय, प्रियोभयाय इत्यादि।

४. तृतीयासमासे – १.१.३०

अर्थ – तृतीया तत्पुरुष समास में स्थित सर्व इत्यादि शब्द सर्वनाम **नहीं** होते।

उदा . मासपूर्वाय, संवत्सरपूर्वाय इत्यादि।

५. द्वन्द्वे च – १.१.३१

अर्थ – द्वन्द्व समास में भी स्थित सर्व इत्यादि शब्द सर्वनाम **नहीं** होते।

उदा. – पूर्वापराणाम् , दक्षिणोत्तरपूर्वाणाम् , कतरकतमानाम् इत्यादि।

६. विभाषा जसि – १.१.३२

अर्थ – द्वन्द्व समास में पर में यदि **जस्** प्रत्यय हो तो सर्व इत्यादि शब्द विकल्प से सर्वनाम कहे जाते हैं। कतरकतमे/कतरकतमाः, पूर्वापरे/पूर्वापराः।

७. प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च – १.१.३३

अर्थ – प्रथम, चरम, तयप् प्रत्ययान्त, अल्प, अर्ध,कतिपय, और नेम शब्द भी पर में यदि **जस्** प्रत्यय हो तो विकल्प से सर्वनाम कहे जाते हैं।

उदा. – प्रथमाः/ प्रथमे, चरमाः/चरमे, द्वितयाः/द्वितये इत्यादि

८. पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् – १.१.३४

अर्थ- असंज्ञावाची व्यवस्था अर्थ हो, तथा **जस्** प्रत्यय पर में हो तो पूर्व, पर, अवर दक्षिण, उत्तर, अपर, और अधर शब्दों की विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है।

उदा. – पूर्वे/पूर्वाः, परे/पराः इत्यादि।

९. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् – १.१.३५

अर्थ – ज्ञाति और धन से भिन्न अर्थ में स्थित **स्व** शब्द के बाद यदि **जस्** प्रत्यय हो तो उसकी विकल्प से सर्वनामसंज्ञा होती है।

उदा.- स्वे पुत्राः/स्वाः पुत्राः , स्वे गावः/ स्वाः गावः।

१०. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः – १.१.३६

अर्थ - बाह्य और **परिधानीय** अर्थ में स्थित **अन्तर्** शब्द के बाद यदि **जस्** प्रत्यय हो तो उसकी विकल्प से सर्वनामसंज्ञा होती है।

उदा. अन्तरे गृहाः/ अन्तराः गृहाः।

॥ भ ॥

- भ संज्ञा करने वाले ३ सूत्र हैं

१. यचि भम् १.४.१८

अर्थ – यकारादि तथा अजादि (जिसका प्रथम वर्ण स्वर) असर्वनामस्थान प्रत्यय यदि पर में हो तो पूर्व की भसंज्ञा होती है।

उदा. – गार्ग्यः, वात्स्यः, दाक्षिः इत्यादि।

२. तसौ मत्वर्थे १.४.१९

अर्थ – मत्वर्थीय प्रत्यय यदि पर में हों तो तकारान्त और सकारान्त शब्द **भ** कहे जाते हैं। भसंज्ञा होने के कारण पद संज्ञा का निषेध हो जाता है। गरुत्मान् , यशस्वी। इत्यादि।

३. अयस्मयादीनि च्छन्दसि १.४.२०

अर्थ – अयस्मय इत्यादि शब्द वेद में **भ** कहे जाते हैं।

॥ गति (२० सूत्र) ॥

१. गतिश्च १.४.६०

अर्थ – प्र आदि २२ उपसर्ग यदि क्रिया के साथ युक्त हों तो गति भी कहे जाते हैं।

२. ऊर्यादिच्विडाचश्च १.४.६१

अर्थ – ऊरी आदि शब्द, च्वि प्रत्ययान्त तथा डाच् प्रत्ययान्त शब्द भी गति कहे जाते हैं। ऊरीकृत्य। उररीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य इत्यादि।

३. अनुकरणं चानितिपरम् – १.४.६२

अर्थ – ऐसा अनुकरण शब्द जिसके बाद इति न हो वह भी गति कहा जाता है। जैसे खाट्कृत्य इत्यादि।

४. आदरानादरयोः सदसती १.४.६३

अर्थ – **आदर** और **अनादर** अर्थ में स्थित **सत्** और **असत्** भी गति कहे जाते हैं। सत्कृत्य , असत्कृत्य।

५. भूषणेऽलम् १.४.६४

अर्थ – भूषण अर्थ में स्थित **अलम्** भी गति माना जाता है। अलङ्कृत्य।

६. अन्तरपरिग्रहे १.४.६५

अर्थ – अस्वीकार अर्थ में स्थित अन्तः भी गति कहा जाता है। अन्तर्हत्य।

७. कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते १.४.६६

अर्थ – अश्रद्धा अर्थ में **कणे** और **मनस्** गति कहे जाते हैं। कणेहत्य/मनोहत्य पयः पिबति।

८. पुरोऽव्ययम् १.४.६७

अर्थ – पुरस् अव्यय भी गति कहा जाता है। पुरस्कृत्य।

९. अस्तं च १.४.६८

अर्थ – अस्तम् अव्यय भी गति कहा जाता है। अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति।

१०. अच्छ गत्यर्थवदेषु १.४.६९

अर्थ - **गत्यर्थक** तथा **वद्** धातु के साथ प्रयुक्त **अच्छ** अव्यय भी गति कहा जाता है। अच्छगत्य , अच्छोद्य

११. अदोऽनुपदेशे १.४.७०

अर्थ – अदस् शब्द का अनुपदेश अर्थ हो तो गति कहा जाता है। अदःकृत्य।

१२. तिरोऽन्तर्द्धौ १.४.७१

अर्थ - तिरस् शब्द का व्यवधान अर्थ हो तो गति संज्ञा होती है। तिरोभूय।

१३. विभाषा कृञि १.४.७२

अर्थ – व्यवधान अर्थ स्थित तिरस् के बाद कृञ् धातु आने पर विकल्प से गति संज्ञा होती है। तिरस्कृत्य/ तिरःकृत्य (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरः कृत्वा।

१४. उपाजेऽन्वाजे १.४.७३

अर्थ – उपाजे और अन्वाजे के बाद कृञ् धातु आने पर विकल्प से गति संज्ञा होती है। उपाजेकृत्य/उपाजे कृत्वा , अन्वाजेकृत्य/ अन्वाजेकृत्वा।

१५. साक्षात्प्रभृतीनि च १.४.७४

अर्थ – **साक्षात्** आदि शब्दों के बाद कृञ् धातु हो तो उसकी विकल्प से गति संज्ञा होती है। साक्षात्कृत्य/ साक्षात् कृत्वा, मिथ्याकृत्य/ मिथ्याकृत्वा।

१६. अनत्याधान उरसिमनसी १.४.७५

अर्थ –असंयोजन अर्थ हो तो उरस् और मनस् भी विकल्प से गति कहे जाते हैं। यदि पर में **कृ** हो तो ।उरसिकृत्य/उरसि कृत्वा, मनसिकृत्य/ मनसिकृत्वा।

१७. मध्येपदेनिवचने च १.४.७६

अर्थ – **मध्ये,पदे** और **निवचने** शब्द के बाद **कृ** हो तो विकल्प से गति संज्ञा होती है। मध्येकृत्य/मध्ये कृत्वा, पदेकृत्य/पदेकृत्वा इत्यादि।

१८. नित्यं हस्ते पाणावुपयमने १.४.७७

अर्थ –**विवाह** अर्थ हो तथा बाद में यदि **कृ** धातु हो तो **हस्ते** और **पाणौ** शब्द की **नित्य** गति संज्ञा होती है। हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य।

१९. प्राध्वं बन्धने १.४.७८

अर्थ – **बन्धन** अर्थ में स्थित **प्राध्वम्** अव्यय के बाद यदि **कृ** धातु हो तो गति संज्ञक होता है। प्राध्वंकृत्य

२०. जीविकोपनिषदावौपम्ये १.४.७९

अर्थ – उपमा अर्थ हो तथा बाद में यदि **कृ** धातु हो तो जीविका और उपनिषद् शब्द गति कहे जाते हैं। जीविकाकृत्य/ उपनिषत्कृत्य।

गतिसंज्ञा के नियमनार्थ ३ सूत्र और ध्येय हैं।

१ -ते प्राग्धातोः १.४.८०

गति और उपसर्ग धातु से पहले ही प्रयुक्त होते हैं। प्रकृत्य,ऊरीकृत्य इत्यादि।

२- छन्दसि परेऽपि १.४.८१

वेद में पर में भी इनका प्रयोग देखने को मिलता है –याति नि हस्तिना। हन्ति नि मुष्टिना।

३- व्यवहिताश्च १.४.८२

वेद में व्यवधान से युक्त भी दिखाई पडते हैं। हरिभ्यां याह्योक आ, आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।